इकाई 3 धर्म, धर्म–दर्शन, और धर्म–मीमांसा*

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 धर्म

3.3 धर्म–दर्शन

3.4 धर्म–मीमांसा

3.5 सारांश

3.6 कुंजी शब्द

3.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

- धर्म के अवयवों को समझना;
- धर्म–दर्शन को दर्शन के एक उपवर्ग के रूप में समझना;
- दर्शन, धर्म–दर्शन, और धर्म–मीमांसा के क्षेत्रों को अलग करना तथा उनके परस्पर सम्बन्धों को समझना।

* अरीबा ज़ैदी, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, ज़ाकिर हुसैन दिल्ली महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।
अनुवाद– डॉ. रिंकी जादवानी, सहायक प्राध्यापक, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली।

ध्यातव्यः ''आओ विचार करें'' में दी गयी विषय वस्तु मानक इकाई का हिस्सा नहीं है, लेकिन इस पर विचार करने से इकाई की विषय–वस्तु के बारे में आपकी समझ समृद्ध होगी और ज्ञान को व्यापक संदर्भ में आत्मसात करने में सहायता मिलेगी।

3.1 परिचय

समान महत्व के प्रतिच्छेदी क्षेत्रों को समानता की छाप देना असामान्य नहीं है, भले ही वह ऐसे नहीं हों; लेकिन एक बारीक निरीक्षण इस धारणा को शीघ्र ही दूर कर देता है। दर्शन, धर्म–दर्शन, और धर्म–मीमांसा भी ऐसे क्षेत्र हैं जो एक दूसरे को प्रतिच्छेदित करते हैं, प्रायः सदृश होने का आभास देते हैं, लेकिन एक सूक्ष्म परीक्षण अन्यथा संकेत करता है, क्योंकि क्षेत्र प्रतिच्छेद कर सकते हैं, महत्व संरेखित हो सकते हैं, लेकिन ऐसा वह एक भिन्न उद्देश्य तथा प्रवृत्ति के साथ करते हैं। इस प्रकार, यह इकाई, इस प्रतिच्छेदन का ध्यानपूर्वक परीक्षण तथा इन तीनों को क्या पृथक् करता है, की व्याख्या करने का प्रयास करती है।

इस प्रयास में, धर्म से प्रारम्भ करना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि स्वयं में एक संपूर्ण क्षेत्र होने के अलावा यह अन्य दो की विषय–वस्तु भी है। इसलिए, धर्म क्या दर्शाता है, इसका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

3.2 धर्म

यद्यपि एक निश्चित संख्या पर पहुँच पाना कठिन है, अधिकांश आंकलन धर्मों, उनके सम्प्रदायों तथा उनकी विश्वव्यापी प्रचलित शाखाओं की संख्या 4000 से अधिक बताते हैं। इस प्रकार, हालांकि यह पूर्णतः असंभव नहीं है, लेकिन ऐसे व्यक्ति के मिलने की संभावना बहुत कम है जो किसी ना किसी रूप में धर्म से परिचित ना हो, फिर भी इसे किसी निश्चित रूप में परिभाषित करने का प्रयास करना संभवतया एक असफल प्रयास में परिणत होता है, क्योंकि धर्म ऐसे विविध विश्वासों, प्रथाओं, रीतियों, तथा अनुपालनों को प्रस्तुत करता है जिनमें बहुत कम समतुल्यता पायी जाती है।

इसलिए, धर्म को समझने का अधिक उपयोगी दृष्टिकोण इसके सामान्य तथा समान लक्षणों का निरूपण करना हो सकता है, तथा तत्पश्चात् ऐसे लक्षणों को आधार बनाकर, धर्म की अवधारणा क्या प्रदर्शित करती है, इसके बारे में एक व्यापक तथा समग्र दृष्टिकोण का संश्लेषण करना है।

धर्म को किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समुदाय या किसी सम्प्रदाय के द्वारा अनुपालन करने वाले कुछ मूल विश्वासों के समुच्चय, इससे संबद्ध प्रथाओं, तथा रीतिओं से निर्धारित किया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से, धर्म एक ऐसे मूल विश्वासों के समुच्चय को प्रदर्शित करता है जो किसी व्यक्ति या समूह की जीवन शैली को निर्धारित करता है। पिछले कथनों के संदर्भ में तथा यहाँ से आगे की परिचर्चा के लिए यह समझना महत्वपूर्ण है कि "विश्वास" क्या हैं।

विश्वास ऐसे कथन, दावे, या प्रतिज्ञप्तियां हैं जिन्हें किसी व्यक्ति या समूह के द्वारा सत्य माना या स्वीकार किया जाता है। उदाहरणतः जब कोई इस कथन को, "सूर्य पूर्व में उदय होता है", सत्य मानता है, तब वह इस कथन/प्रतिज्ञप्ति के प्रति एक सकरात्मक मानसिक दृष्टिकोण अपनाता या बनाता है। इस मानसिक प्रवृत्ति को हम विश्वास कह सकते हैं। इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि विश्वास किसी प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। हालांकि, वे प्रतिज्ञप्ति की सत्यता या असत्यता का किसी व्यक्ति या समूह द्वारा मानने का प्रतिनिधित्व करते हैं। विश्वास के पूर्वोक्त मत तथा उसके साथ हमारे सामान्य अनुभव को देखते हुए, संभवतया बिना किसी असहमति को आकृष्ट किए हुए, यह कहना युक्तिसंगत है कि हमारे सभी विश्वासों का स्वरूप धार्मिक नहीं होता है, यह सूचित करता है कि हमारे धार्मिक विश्वासों तथा सामान्य रूप से निर्धारित अन्य विश्वासों को पृथक् करने की कुछ अभिज्ञेय प्रमुख विशेषताएं होनी चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक विश्वासों–ऐसे दावे जिन्हें धार्मिक परिक्षेत्र के अन्दर सत्य माना जाता है – की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को समझने का एक विश्वसनीय तरीका यह अवलोकन करने से, कि संगठित धर्म विश्व भर में कैसे कार्य करते हैं, तथा उससे कुछ व्यापक सामान्यीकरण पर पहुँचने से है।

3.2.1 धर्म की प्रमुख विशेषताएं

3.2.1.1 कुछ मूलभूत प्रश्नों के उत्तर देने का दावा करते हैं

प्राथमिक तौर पर, विश्व के अधिकांश धर्म कुछ मूलभूत प्रश्नों के उत्तरों का एकमात्र भण्डार होने का दावा करते हैं। इन प्रश्नों में से कुछ मूलभूत प्रश्न, जैसे परम सत् क्या है, कुछ भी आखिरकार अस्तित्ववान क्यों है, इस प्रकार के सत् में हमारा स्थान क्या है, हमारा वास्तविक स्वरूप क्या है, आदि समाविष्ट हो सकते हैं। ये प्रश्न, तार्किक रूप से, यह संकेत करते हैं कि धर्म हमारे सत् की रूपरेखा प्रस्तुत करने का दावा करता है। अधिकतर धर्म, यदि सभी नहीं, इन प्रश्नों का उत्तर देते हैं तथा अक्सर एक ऐसे सत् को प्रक्षिप्त करते हैं जो कि हमारे सामान्य अनुभव से परे होता है, लेकिन साथ ही साथ हमारे जीवन तथा जीवन के कल्याण से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ होता है।

आओ विचार करें –I

विश्वास व्यक्तियों के निर्णय लेने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, साथ ही उनके सम्पूर्ण जीवन को एक आकार में भी ढालते हैं। आप यदि धार्मिक मान्यताएं रखते हैं तो उनके संदर्भ में भी यही अपेक्षा की जानी चाहिए।

अपने जीवन के उन निर्णयों की सूची बनाएं जो धार्मिक विश्वासों से पूर्ण या आंशिक रूप से प्रभावित हुए हैं। आप धर्म से प्रभावित या नियंत्रित अपने जीवन–विस्तार को खोज पायेंगे।

कुछ उदाहरण, उपरोक्त कथनों के सार को निश्चित रूप से समझने में उपयोगी हो सकते हैं। ऊपर वर्णित प्रश्नों में से किसी एक पर विचार करें, "कुछ भी अस्तित्ववान क्यों है"। अन्वेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अनेक धर्म इस प्रश्न के उत्तर में एक रचनाकार या एक ''अकृत कारण'' (*कोज़ा सुई*, वह कारण जिसका कोई कारण न हो) की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम, तथा हिन्दू धर्म के अन्य कई सम्प्रदाय इसी श्रेणी में आते हैं, जहाँ किसी एक आस्तिक/ ईश्वरवादी अवधारणा की ओर आग्रह किया जाता है, जिसमें ईश्वर या देवताओं को अन्य कई भूमिकाओं के साथ एक रचनाकार/निर्माता माना जाता है। यद्यपि सभी धर्म इस अवधारणा को स्वीकार नहीं करते हैं। उदाहरणतः जैन दर्शन तथा बौद्ध दर्शन जगत के अस्तित्व की व्याख्या करने के लिए किसी निर्माता की अवधारणा प्रस्तुत नहीं करते हैं। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि अस्तित्व के प्रश्न को छोड़ दिया गया है। अन्तर सिर्फ़ समाधान के स्वरूप को प्रस्तुत करने का होता है।

इस प्रकार के उत्तरों को सम्बन्धित धर्म समुदाय में परम सत्य माना जाता है। इसके अलावा, इस तरह के दावे, उन्हें प्रदत्त अपरिवर्तनीय अवस्थिति के कारण, किसी भी चुनौती के प्रति रूढ़ होते हैं, अर्थात् उनकी सत्ता को अन्तिम माना जाता है तथा अधिकांश धर्मों में उनकी वैधता निर्विवाद मानी जाती है। यद्यपि पूर्वगामी का यह तात्पर्य नहीं है कि किसी धर्म में प्रचलित मान्यताएं समान रूप से सभी अनुयायियों द्वारा हमेशा स्वीकार की जाती हैं। आन्तरिक मतभेद/असहमति अक्सर एक ही धार्मिक सिद्धान्त की अलग–अलग व्याख्याओं के कारण होती है, लेकिन ऐसी मान्यताओं का दृढ़ चरित्र तथा उनकी अलग–अलग व्याख्याएं धर्म को अलगाव की ओर धकेलते हैं। सभी प्रमुख धर्मों के उपवर्ग इसी प्रवत्ति का प्रमाण हैं।

3.2.1.2 एक उच्च उद्देश्य देते हैं जिसे हमारे जीवन का मार्गदर्शन करना चाहिए

विश्व के अधिकांश धर्मों की एक अन्य विशेषता जीवन के अर्थ के मुद्दे को संबोधित करने का एक सम्मिलित/संगठित प्रयास है, अर्थात् इस तरह के प्रश्नों जैसे; 'क्या जीवन का कोई अन्तर्निहित अर्थ है' या 'क्या ऐसा कोई उच्चतम उद्देश्य है जिसे हमारे जीवन का मार्गदर्शन करना चाहिए', को सम्बोधित करना। पूर्वोक्त मुद्दे सम्भवतः हमारे जीवन के निकट भविष्य के आसन्न उद्देश्य से उपजे हैं, जो हमारे ऊपर मनोवैज्ञानिक रूप से अशांत करने वाले प्रश्न जैसे कि, क्या मृत्यु अन्तिम सत्य है जो हमें तथा हमारे प्रियजनों को टकटकी लगाये देख रहा है, या फिर किसी प्रकार की निरन्तरता है जो हमारे जीवन को, जो दिखाई देता है, उससे कहीं अधिक सार्थक बनाता है? अधिकांश धर्म हमारे वास्तविक स्वरूप की अवधारणा को प्रस्तुत करके, निरन्तरता की इस मानवीय लालसा को संतुष्ट करते हैं, जोकि नश्वर भौतिक शरीर से भिन्न है। उदाहरण के लिए, अधिकांश धर्म हमारे वास्तविक स्वरूप को परिभाषित करने के लिए आत्मा, स्व, तथा चेतना जैसी कुछ अवधारणाओं पर निर्भर होते हैं तथा वस्तुतः वह निरन्तरता तथा शान्ति स्थापित करते हैं जिसे नैतिकता, अस्थायित्व तथा मृत्यु से खतरे में नहीं डाला जा सकता है। इसी नित्य वास्तविक प्रकृति के संदर्भ में अधिकांश धर्म जीवन के उद्देश्य को परिभाषित करते हैं या उसे अर्थ देते हैं। यहूदी–ईसाई तथा इस्लाम धर्मों के लिए मुक्ति, हिन्दू धर्म के लिए मोक्ष, बौद्ध धर्म के लिए निर्वाण, जैन धर्म के लिए कैवल्य जीवन के ऐसे ही उच्च उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.2.1.3 किसी के कार्यों का मार्गदर्शन करने के लिए सामान्य नैतिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं

ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश धर्म अपने अनुयायियों की नैतिक सीमा को आकार देने में केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। वैकल्पिक रूप से, अधिकांश धर्म, क्या सही तथा क्या गलत है, क्या शुभ, अशुभ है, के क्षेत्र को निर्धारित करते हैं, इसका अर्थ यह है कि धर्म वह सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिसका पालन धर्म के अनुयायी को अपने जीवन के कार्य–कलापों के संचालन में करना चाहिए। उदाहरणतः *भगवत् गीता* के प्रमुख सिद्धान्तों में से एक, निष्काम कर्म का सिद्धान्त अपने कर्तव्य का पालन करते हुए इच्छा रहित तथा निःस्वार्थ कर्म के अनुसरण की खोज का आह्वान करता है।

इन सिद्धान्तों को दैवीय आदेश माना जाता है, अर्थात् ऐसे ज्यादातर मामलों में धर्म के अनुयायियों को ऐसे सिद्धान्तों या कर्तव्यों को स्वीकार करने या नकारने की स्वायत्ता नहीं दी जाती है। किसी अनुयायी के द्वारा इन सिद्धान्तों का पालन करना सम्मान या भय या दोनों के संयोजन के रूप में देखा जा सकता है। ऐसे सिद्धान्तों के प्रति सम्मान बोधगम्य है क्योंकि एक अनुयायी के द्वारा इन्हें दैवीय आदेश माना जाता है, जबकि भय अवांछनीय परिणामों तथा दण्डों से उत्पन्न होता है जो कि इन आदेशों का पालन ना करने से सम्बद्ध हैं।

3.2.1.4 आस्था

आस्था एक अन्य प्रमुख विशेषता है जो धर्म से इस प्रकार से जुड़ी हुई है जो तार्किक रूप से जीवन के अन्य क्षेत्रों में अद्वितीय है। आस्था, एक प्रकार से, उसके होने के लिए बिना किसी पुष्टीकरण का प्रयास करते हुए, किसी एक विश्वास या विश्वासों के समूह का समर्थन करना है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, आस्था में किसी एक प्रतिज्ञप्ति, दावे, या कथन को सत्य माना जाता है। अतरू आस्था, पूर्वोक्त अर्थों में, ऐसा करने के लिए किसी पुष्टीकरण की आवश्यकता के बिना दावों/ प्रतिज्ञप्ति/ कथन की सत्यता को स्वीकार करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी धर्म के अनुयायी, पूर्वोक्त अर्थों में, अपने धर्म के आदेशों तथा दावों में आस्था रखते हैं तथा उसी के अनुसार अपने जीवन में आचरण करते हैं।

अनुगमन धर्म के क्षेत्र से पुष्टीकरण का पूर्ण रूप से अभाव नहीं दर्शाता है। आस्था होने का यह अर्थ नहीं है कि अनुयायी तथा उस धर्म का अभ्यास करने वाला पूर्ण रूप से तर्कसंगतता का त्याग कर देते हैं। इसके ठीक विपरीत, किसी अनुयायी या उस धर्म का अभ्यास करने वाले के आचरण में पुष्टीकरण धर्म के केन्द्र में रहता है, लेकिन ऐसे पुष्टीकरण हमेशा धर्म द्वारा विकसित नीतियों, दावों तथा सिद्धान्तों के द्वारा ही आते हैं। अधिकतर धर्मों में, इन नीतियों, दावों, तथा सिद्धान्तों के पुष्टीकरण की मांग वह नहीं कर सकते हैं, जो किसी धर्म विशेष की इमारत बनाते हैं। वास्तव में, धर्म के मूलभूत विश्वासों तथा उनकी बुनियाद पर सवाल करना प्रायः धर्म के लिए अपमान स्वरूप माना जाता है। इसलिए ज्यादातर धर्मों में इस प्रकार की ईशनिन्दा को रोकने के लिए निवारक उपाय हैं।

3.2.1.5 परम ज्ञान के स्रोत के रूप में रहस्योद्घाटन

धार्मिक ज्ञान अक्सर ज्ञान के एक विशिष्ट स्रोत पर निर्भर होता है जो उन्हें विश्वास के अन्य अधिकांश विश्वासों से अलग करता है। अधिकांश धर्मों में ज्ञान का स्रोत किसी प्रकार की दैवीय रहस्योद्घाटन, या कोई सत्ता जैसे शास्त्र, पैगम्बर, या अभिलेख, जिसे समस्त ज्ञान का भंडार माना जाता है, जिसका सत्य तथा वैधता कथित रूप से निर्विरोध तथा अद्वितीय है।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, धार्मिक प्रथाओं के सभी पुष्टीकरण उन पर निर्भर करते हैं जबकि उनका पुष्टीकरण सामान्य तौर पर अधियाचित दैवत्व या परम सत्ता में अवस्थित होता है।

3.2.1.6 कर्मकाण्ड

कर्मकाण्ड, जो कि सामान्य तौर पर सामजिक–सांस्कृतिक परिघटना है, अधिकांश धर्मों का अभिन्न अंग है। रीति–रिवाज, इस अर्थ में, अक्सर अपने अनुयायियों के कथित लाभ के लिए धर्म–संस्थापित प्रथाओं तथा रीति–रिवाज़ों के विशिष्ट संग्रह का गठन करता है। ये, सामान्य तौर पर, एक व्यक्ति के सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र के सबसे अधिक धर्मनिरपेक्ष पहलू के साथ एकीकृत प्रथाएं हैं जो उनके "क्या" तथा "कैसे' का निर्धारण करती हैं। इन रीति–रिवाज़ों के

भेदन की सीमा पर अक्सर किसी का ध्यान नहीं जाता है, लेकिन यह किसी धार्मिक व्यक्ति के जन्म से मृत्यु तक विभिन्न चरणों के निरीक्षण से ही समझा जा सकता है।

3.2.1.7 प्रार्थना

प्रार्थना अधिकांश धर्मों से संबद्ध परिघटना है। इसे परमात्मा तथा उसके विषय के बीच संचार के माध्यम की तरह धारण किया जाता है। ऐसा ही एक प्रयोजन ईश्वर के प्रति श्रद्धा तथा सम्मान प्रदर्शित करना, तथा इस प्रकार के प्रयोजन को पूरा करने वाली प्रार्थना से है, इसलिए यह पूजा तथा स्तुति करने वाले तत्वों को शामिल करता है। ऊपर उल्लिखित से अलग, निवेदन सम्बन्धी प्रार्थनाएं हैं, जहाँ प्रयोजन किसी इच्छा को पूरा करने, या किसी गलत आचरण के लिए माफ़ी मांगने, या यह सुनिश्चित करना होता है कि परमात्मा का आशीर्वाद भक्तों पर बना रहे। निवेदन सम्बन्धी प्रार्थनाओं का महत्वपूर्ण पहलू परमात्मा या ईश्वर की अवधारणा है।

3.2.1.8 अध्यात्मवाद

अध्यात्मवाद, यद्यपि अक्सर इसे धर्म के साथ ही पहचाना जाता है, यह एक धर्मनिरपेक्ष अवधारणा है। यह स्वयं के स्वभाव को समझने की खोज है, या जिसे आत्म–साक्षात्कार की खोज भी कहा जा सकता है। उपरोक्त अर्थ में, यह जीवन के अर्थ को समझने की चाह के साथ करीब से जुड़ा हुआ है, लेकिन जब ऐसे अर्थ को धर्म की सीमाओं के अन्दर ढूंढा जाता है, या जब स्वयं के स्वभाव को समझने की खोज धर्म के दरवाजे तक ले जाती है, तो यह धर्म के साथ एकीकृत हो जाती है। इस प्रकार, अध्यात्मवाद धर्म का एक अभिन्न अंग है लेकिन धर्म का अर्थ एकमात्र अध्यात्मवाद नहीं है। यह अब तक धर्म की आवश्यक विशेषताओं को पाठकों को उन विश्वासों तथा प्रथाओं को पहचानने तथा अलग करने में सहायता के लिए प्रस्तुत किया गया है जो धर्म के प्रतिनिधि हैं। पूर्ववर्ती धर्म को चित्रित करने वाली विशेषतओं की एक व्यापक सूची नहीं है, फिर भी ये आगे के अन्वेषण के लिए अपने क्षेत्र के चारों ओर एक संभावित परिधि बनाने के लिए पर्याप्त सामान्यीकरण तैयार करते हैं।

बोध प्रश्न I

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. धर्म की सामान्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.3 धर्म–दर्शन

यह खण्ड धर्म–दर्शन का विवरण प्रस्तुत करता है, लेकिन बिना ये इंगित किये हुए कि दर्शन सामान्य रूप से क्या प्रस्तुत करता है, बतायी गयी दिशा में कोई भी निश्चित प्रगति अकल्पनीय है।

पिछले खण्ड में धर्म के संदर्भ में जो देखा गया है, दर्शन उससे एक अभिवृत्तिक बदलाव का प्रतीक है। यदि धर्म अपने आधार के रूप में विश्वास के बारे में है, दर्शन किसी भी दावे के लिए संदेहवाद* या संशय की अवस्था को अपनाता है। किसी भी स्पष्ट या अस्पष्ट के लिए संदेहवाद की यह प्रवृत्ति दर्शन के केन्द्र में है। पूर्ववर्ती अर्थ में दर्शन हमारी धारणाओं की इमारत में निरंकुश छान–बीन की संभावना प्रस्तुत करता है।

* संदेहवाद का प्रयोग यहाँ एक विशिष्ट अर्थ में किया गया है। इसे सत्य के किसी भी दावे पर प्रश्न करने, इस तरह की प्रतिज्ञप्तियों को बनाने वाली श्रेणिओं की वैचारिक स्पष्टता की तलाश करने और तार्किक संगतता की तलाश करने की तत्परता के रूप में समझा जाना चाहिए, यह सब ऐसे पुष्टीकरण और उसमें शामिल धारणाओं की सीमा को स्वीकार करने के स्वागत के साथ होना चाहिए।

निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार कीजिए तथा कुछ समय के लिए चिंतन कीजिए। 'वास्तविकता क्या है', 'क्या इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से परे कोई वास्तविकता है', कुछ भी अस्तिववान क्यों है, 'इस जगत में हमारा क्या स्थान है', 'क्या जीवन का कोई अर्थ है', 'हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है वह कैसे होता है' 'क्या हम स्वतन्त्र इच्छा रखने वाले स्वतन्त्रकर्ता हैं', आदि। पूर्ववर्ती खण्ड में यह बताया गया था कि धर्म इन प्रश्नों का या इनमें से कम से कम कुछ प्रश्नों का उत्तर प्रदान करने का दावा करता है, लेकिन क्या ऐसे प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए धर्म पर निर्भर होना आवश्यक है, या ऐसे मुद्दों पर किसी के आश्चर्य या जिज्ञासा के आशय के विकल्प का भी प्रयोग कर सकते हैं।

आओ विचार करें –II

तर्क–वितर्क का प्रयोग जांच के औपचारिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है। वास्तव में, आप उसे अपने दिन–प्रतिदिन के संवादों में संभवतया जितना समझते हैं, उससे कहीं अधिक अनजाने में ही प्रयोग करते हैं।

तर्कों के निम्नलिखित रूपों को देखें:

आगमन, निगमन और ***अपगमन***

आप अपने वार्तालापों का निरीक्षण कर देखें कि आप और आपके आस–पास के अन्य लोग इन संरचनाओं को कैसे प्रयोग करते हैं।

यदि कोई व्यक्ति बाद वाले विकल्प का प्रयोग करता है तथा उस पर चिंतन करता है, यह शीघ्र ही समझा जा सकता है कि प्रत्येक प्रश्न के उत्तर एक से अधिक तरीकों से दिये जा सकते हैं। स्पष्ट रूप से, हजारों धर्मों तथा उनकी शाखाओं में प्रत्येक का अस्तित्व इन प्रश्नों के उत्तर में विविधता तथा बहुलता का प्रमाण देता है, और जब गैर–धार्मिक उत्तरों को भी इसमें जोड़ दिया जाता है, किसी भी अभिकथन के लिए यथोचित संदेह करना विवेकपूर्ण प्रतीत हो सकता है, चाहे वह किसी भी सत्ता से आ रहा हो। दर्शन की यह प्रवृत्ति धर्म के बिल्कुल विपरीत है, जिसके आधाररूप में विश्वास है और इसलिए यह सत्ता के शब्दों को अपनाने में संतुष्ट है।

स्पष्टरूप से, संदेह या संशय किसी को यह पूछने के लिए प्रेरित करता है कि एक दावा किन तरीकों से सत्य है। यह जाँच इस सन्दर्भ में 'पुष्टीकरण' के महत्व को सामने लाती है। पुष्टीकरण का अर्थ किसी घोषणा द्वारा किये गये दावे का समर्थन करना या उसे आधार प्रदान करना है, लेकिन दर्शन में, इसका एक विशिष्ट अर्थ तथा सरंचना है। इस सरंचना को युक्ति कहते हैं, जिसमें एक निष्कर्ष होता है– प्रतिज्ञप्ति जिसे कोई स्थापित करना चाहता है, और

आधारवाक्य–प्रतिज्ञप्ति जिसे कोई निष्कर्ष को स्थापित करने के लिए प्रस्तुत करता है। युक्ति एक संरचना है जिस पर दर्शन, दावों को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए निर्भर होता है।

आओ विचार करें –III

यदि आप पिछली गतिविधियों में सक्रिय रहे हैं, तो आपने देखा होगा कि तर्क आपके वार्तालापों, विश्वासों और निर्णयों को विशेष रूप से आकार देते हैं। इस अर्थ में, वे आपके जीवन को आकार देते हैं, लेकिन हो सकता है कि आप अपनी आशानुरूप दक्षता से उन्हें अपने जीवन में उपयोग में नहीं ला पा रहे हों।

सामान्य संज्ञानात्मक पूर्वग्रहों और तार्किक दोषों की जांच करें जो आपके निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

हालांकि धर्म भी, यह तर्क दिया जा सकता है, तर्कसंगतता के लिए युक्तियों पर निर्भर होता है, वास्तव में यह एक सामान्य संरचना है जिसे नियमित संवाद में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः निश्चित रूप से धर्म भी दर्शन की तरह युक्तियों का प्रयोग करता है लेकिन दर्शन की तरह अपनी क्षमता का उपयोग नहीं करता है। दार्शनिक युक्तियों में आधारवाक्यों तथा निष्कर्षों को चुनौती दी जा सकती है, तथा नयी जानकारी के आलोक में यदि विरोधाभास और विसंगतियां सामने आती हैं, दार्शनिक युक्तियां क्रमिक सुधार करने मे सक्षम होती हैं जो कि धर्म के क्षेत्र में पूर्णतः गायब रहता है। इसके अलावा, युक्तियों का निर्माण करने में दर्शन तार्किक दोष* तथा संज्ञानात्मक पूर्वग्रहों† को दूर रखने का प्रयास करता है, जो, ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म का मजबूत दावा नहीं है। पूर्ववर्ती अर्थ में, दर्शन जीवंत, सदा–प्रगतिशील, नवीन संग्रह को जोड़ता है। इसके विपरीत धार्मिक युक्तियों के दावों को, जैसा कि पिछले खण्ड में व्याख्या की गयी है, परम सत्य माना जाता है तथा इसलिए इन्हें किसी भी चुनौती के अधीन नहीं किया जा सकता है। अतः, विसंगतियो तथा विरोधाभासों की स्थिति में भी वे दृढ़ बने रहते हैं।

---

* तार्किक दोष किसी तर्क की समग्रता को खराब करते है। युक्ति के रूप या संरचना को कमज़ोर करना, अर्थात् अनुमान के उचित नियमों का पालन ना करना, उनके साकार होने के तरीकों में से एक है, इसलिए इन्हें औपचारिक/आकारिक दोष कहा जाता है। अनौपचारिक दोष तार्किक दोषों का एक और स्वरूप है, जहाँ कुछ छलने वाले उपकरण युक्तियों के छद्म वेश में प्रस्तुत होते हैं।

† संज्ञानात्मक पूर्वग्रह सामान्य दृष्टि में अक्सर होने वाले व्याघातों तथा विसंगतियों को छुपाते हुए हमारे समक्ष एक सुरंग रूपी दृष्टि का निर्माण करते हैं। संज्ञानात्मक पूर्वग्रह हमें यह याद दिलाते हैं कि हम केवल भौतिक जगत में पैदा नहीं हुए हैं। हम एक सामाजिक– सांस्कृतिक परिवेश में भी पैदा हुए हैं, जहाँ अपनी पूर्ण संज्ञानात्मक क्षमताओं को जानने से पहले हम अपने परिवेश की प्रचलित/प्रभावी मान्यताओं/विश्वासों द्वारा नियन्त्रित होते हैं, जो किसी को वैकल्पिक विचारों पर सोचने से रोकता है।

इस प्रकार, युक्ति के माध्यम पर निर्भर होना तथा स्पष्ट तथा अस्पष्ट के लिए समान रूप में यथोचित संदेह की प्रवृत्ति का समर्थन करके, दर्शन कुछ मूलभूत चिंताओं को संबोधित करता है। बहुत कम चिंतायें, यदि कोई हैं, सत् की प्रकृति को समझने जितनी मूलभूत हो सकती हैं। दर्शन में, अन्वेषण के इस क्षेत्र को तत्वमीमांसा कहते हैं। दर्शन के अन्य मूलभूत मुद्दे ज्ञानमीमांसा है, जो ज्ञान की प्रकृति तथा उससे जुड़े पहलुओं की जाँच करती है; तथा मूल्य सिद्धान्त, जो अपने व्यापक अर्थ में सामान्य सिद्धान्तों पर पहुँचने का प्रयास है जो मूल्यांकनपरक निर्णयों का मार्गदर्शन कर सकते हैं जैसे कि नीतिशास्त्र के सन्दर्भ में, जहाँ दर्शन शुभ तथा अशुभ या सही तथा गलत की श्रेणियों में व्यक्तियों के कर्मों, व्यवहारों तथा आशयों के मूल्यांकन के लिए एक ठोस आधार पर पहुँचने का प्रयास करता है।

उपरोक्त लक्ष्य तथा शायद कुछ और, दर्शन की आधारशिला का स्थान ग्रहण करते हैं, लेकिन दर्शन को क्षेत्र–विशेष में सीमित कर देना संभवतया अप्रिय है, क्योंकि दर्शन लौकिक को समाविष्ट करता है, उसी तरह से जैसे यह गहन तथा मूलभूत को समाविष्ट करती है। इसलिए दर्शन के सार को अन्वेषण के क्षेत्र में नहीं ढूंढना चाहिए। इसकी अपेक्षा यह अन्वेषण के कार्य में प्रतिबिम्बित होता हुआ प्रतीत होता है, संदेह करने के लिए एक झुकाव और सत्ता के प्रति अनादर से प्रेरित पूर्वधारणाओं तथा विश्वासों के मूल को चुनौती देता है।

धर्म–दर्शन के लक्ष्य को अब तक दर्शन के प्रकट किये गये तत्वों की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। इस प्रकार, अभी तक की चर्चा यह प्रदर्शित करती है कि धार्मिक विचार तथा दर्शन की कुछ मूलभूत चिंतायें एक ही क्षेत्र साझा करते हैं, लेकिन दोनों इस साझा समान क्षेत्र को अलग–अलग लक्ष्यों के समूह में देखते हैं। जहाँ दर्शन ऐसे क्षेत्रों मे एक अन्वेषण है जो संभावनाओं के विस्तृत फ़ैलाव का आलोचनात्मक रूप से निरीक्षण करता है, अधिकांश धर्म ऐसे क्षेत्र के अन्वेषण के रूप में सामने नहीं आते हैं, इसके बजाय वे अधिकतर ऐसे क्षेत्रों में अनन्य, वैध तथा ज्ञान का अद्वितीय भण्डार होने का दावा करते हैं।

धर्म–दर्शन धर्म के ऐसे दावों का आलोचनात्मक निरीक्षण करता है जो पहले रेखांकित किए गये एक विशिष्ट प्रवृत्ति तथा साधन पर निर्भर करते हैं। ऐसा करने में, यह धर्म की विभिन्न

अवधारणाओं तथा दावों के मध्य तार्किक विसंगतियों और असंबद्धता की धर्म के दृष्टिकोण से जाँच करता है। साथ ही, यह सामान्य दार्शनिक अन्वेषण, वैज्ञानिक खोज, तथा अन्य प्रतिस्पर्द्धी, परस्पर विरोधी, तथा यहाँ तक कि समवर्ती स्थितियों से जुड़े विकास और परिणामों के आलोक में धार्मिक सिद्धान्तों की जाँच करता है। शेष खण्ड इस बात की व्याख्या करता है कि कैसे धर्म–दर्शन, द्वितीय कोटि की क्रिया के रूप में, धार्मिक दावों को अनर्गल जाँच के अधीन करता है।

आओ विचार करें –IV

यदि आप अपने चिंतनशील कौशल का प्रयोग करते रहते हैं, आप जीवन के अर्थ पर संभवतः चिंतन–मनन करते होंगे। यदि आपने नहीं किया है तो आप अब कर सकते हैं।

इस विषय पर ***अस्तित्ववाद, बेतुकेपन (असंगति)***, और ***नोज़िक की अनुभव मशीन*** के आलोक में अपने विचारों का समालोचनात्मक परीक्षण करें।

- अधिकांश धर्म जैसा कि पिछले खण्ड मे बताया गया है, सत् का ढांचा प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं, और यद्यपि हमेशा नहीं, लेकिन अक्सर ऐसे धर्मों में ईश्वर ऐसे धर्मों के ढांचे के केन्द्र में होते हैं। हालांकि धार्मिक विश्वासों तथा अन्य प्रतिस्पर्द्धी तथा परस्पर विरोधी विश्वास प्रणालियों में जैसे निरीश्वरवाद, अज्ञेयवाद, तथा वैज्ञानिक तथा दार्शनिक अवस्थिति में बहुतत्ववाद है, धर्म–दर्शन ईश्वर के अस्तित्व के लिए प्रस्तुत दावों तथा युक्तियों की अन्य विरोधी मतों तथा उपलब्ध अनुभवजन्य साक्ष्यों के आलोक में जाँच करता है।
- धर्म–दर्शन विभिन्न धर्मों द्वारा अधिचायित ईश्वर के गुणों तथा उनके निहितार्थों की भी जाँच करता है। उदाहरण के लिए, अधिकांश एकेश्वरवादी धर्म ईश्वर पर सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता, सर्वव्यापकता, नित्यता तथा उदारता आदि का आरोपण करते हैं। धर्म–दर्शन में इन विशेषताओं की जाँच उनके वैचारिक क्षेत्रों का सीमांकन करने के लिए की जाती है, यह पहचानने के लिए कि विभिन्न विशेषताएं एक दूसरे से कैसे सम्बन्धित हैं, तथा संगतता और विरोधाभासों के सन्दर्भ में उनके निहितार्थ को समझने के लिए। उदाहरण के लिए, कई धर्मों के लिए दार्शनिक रूप से चुनौतीपूर्ण मुद्दा 'अशुभ की समस्या है' जो ईश्वर के दो गुणों उदारता तथा सर्वशक्तिमान के मध्य विरोधाभास को सामने लाती है।

यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, अर्थात सभी शक्तियों से युक्त और कृपालु है, अर्थात जो दयालु है तथा अपनी प्रजा का कल्याण चाहता है, यह मान लेना उचित प्रतीत होता है कि अपराध, युद्ध, नरसंहार, शोषण, सामाजिक–आर्थिक संकट, महामारी, संक्रामक रोग, जन्मजात विकार, प्राकृतिक आपदाओं जैसी बुराईयों का प्रभाव मासूमों, शिशुओं तथा बच्चों के जीवन पर नहीं पड़ना चाहिए, फिर भी अशुभ अस्तित्वमान है, जिसका अर्थ यह है कि इन दो लक्षणों का आरोपण ईश्वर पर नहीं किया जा सकता है, या फिर इन दो लक्षणों को एक अलग अर्थ में समझना होगा, कुछ ऐसा जिससे अधिकांश धर्म बचते हुए प्रतीत होते हैं।

आओ विचार करें–V

यद्यपि दर्शन में पुष्टीकरण का प्रयास करना तथा प्रदान करना मुख्य है, दर्शन पुष्टीकरण की सीमा के प्रति बेखबर नहीं है। क्या अनवस्था की ओर जाये बिना पुष्टीकरण प्रत्येक दावे के लिए वांछनीय हो सकता है?

यदि पुष्टीकरण अनिश्चित रूप से वांछनीय नहीं हो सकता है, क्या इसका यह अर्थ है कि कुछ प्रतिज्ञप्तियों/दावों को उन पर निर्मित होने वाली शेष ज्ञान प्रणाली को स्वयं सिद्ध सूत्र या ऐसे मूलभूत आधार के रूप में लेना है जिनकी पुष्टि नहीं की जा सकती है, या क्या मूलभूत आधार का पूर्वनिर्धारण किए बिना पुष्टीकरण प्रदान करने के रास्ते हैं?

अपने दृष्टिकोणों को मूलभूतवाद तथा संसक्ततावाद के आलोक में विकसित कीजिए।

● कई धर्म, जैसा कि पिछले खण्ड में बताया गया है, 'जीवन का अर्थ क्या है', या 'जीवन का सही उद्देश्य क्या है' का उत्तर प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि कहा गया, ऐसे उत्तरों में अक्सर 'हमारे वास्तविक स्वरूप को क्या निर्मित करता है' शामिल होता है, कई धर्मों में यह वास्तविक स्वरूप आत्मा होता है, जैसा कि पिछले खण्ड में इंगित किया गया है। आत्मा को, जैसा कि देखा जा सकता है, विविध प्रकार के गुणों से प्रदत्त किया गया है, जो अपना अर्थ ऐसे सभी धर्मों द्वारा घोषित वास्तविकता के वृहत्तर संदर्भ से प्राप्त करते हैं। धर्म–दर्शन हमारे वास्तविक स्वरूप तथा जीवन के उद्देश्य के विवेचन के संदर्भ में आत्मा की अवधारणा की जाँच करता है। उदाहरणतः आत्मा को प्रदत्त कई गुण जैसे जीवंतता, चेतना, अनुभव, तार्किकता, भावनायें आदि उद्भव, तंत्रिकाविज्ञान तथा विशेषतः आण्विक जीव विज्ञान की दृष्टिकोण से देखने पर असमर्थनीय प्रतीत होते हैं। अतः धर्म–दर्शन आत्मा या आत्मा की स्वभाविक प्रकृति के अन्य प्रतियोगी की अवधारणा को धर्म द्वारा

प्रस्तुत युक्तियों की तुलना में अधिक व्यापक युक्तियों के समुच्चय के आलोक में निरीक्षण करता है।

- अधिकांश धर्म ज्ञान का वैध स्त्रोत होने का दावा करते हैं। अतः धर्म–दर्शन इस प्रकार के दावों का निरीक्षण करने के लिए संदेह की दृष्टि अपनाता है। ऐसा करने में यह एक दावे के सत्य होने के लिए पुष्टीकरण के रूप में प्रस्तुत की गयी प्रतिज्ञप्ति का निरीक्षण करता है, लेकिन जैसा कि पिछले खण्ड में बतया गया है, धार्मिक दावे इस प्रकार के पुष्टीकरण के लिए श्रद्धामूलक युक्ति का प्रयोग करते हैं, और इसलिए आगे की जाँच के लिए पारदर्शिता नहीं दिखाते हैं, लेकिन दार्शनिक अन्वीक्षण इस तरह की प्रतिबन्धों के नियन्त्रण में नहीं है तथा परिणामस्वरूप श्रद्धामूलक युक्ति को पुष्टीकरण के एक वैध या विश्वसनीय प्रकार होने पर सवाल उठाता है।

- पुनः, जैसा कि पिछले खण्ड में बताया गया है, अधिकांश धर्म शुभ और अशुभ, या सही और गलत के क्षेत्र को परिभाषित तथा सीमांकित करते हैं, तथा ऐसी धारणाओं के अनुसार कार्यों, व्यवहारों तथा प्रयोजन को निर्देशित करने के लिए आज्ञा/आदेश जारी करते हैं। यद्यपि, धर्म–दर्शन नीतिशास्त्र के क्षेत्र में विकास तथा इस प्रकार के विकास के परिणामों को देखते हुए ऐसे विचारों तथा आदेशों की जाँच करता है, जो शुभ तथा अशुभ पदों द्वारा प्रस्तुत विचारों को समझने का प्रयास करते हैं, ऐसे विचार समाज में कैसे निर्मित किये गये हैं, तथा क्या इस तरह के वर्गीकरण के लिए कोई सार्वभौमिक आधार हो सकता है जैसा कि धर्म निर्धारित करते हुए प्रतीत होते हैं।

आओ विचार करें –VI

धार्मिक मान्यताओं के प्रभाव में आपके द्वारा पहले किये गये निर्णयों की सूची पर एक बार पुनः विचार करें। यदि विकल्प दिया जाये, तो जो आपने दर्शन के बारे में समझा, उसके आलोक में क्या आप उन मान्यताओं में किसी परिवर्तन पर विचार करेंगे?

अभी तक जो कहा गया है वह धर्मदर्शन के प्रयासों की एक झलक है। यह ये आभास दे सकता है कि धर्म–दर्शन, धर्म को लेकर आलोचनात्मक है। ऐसी धारणा निश्चित रूप से सत्य है, लेकिन यह याद दिलाया जा सकता है कि दर्शन अपने मूल में एक आलोचनात्मक तन्त्र है जो किसी भी प्रदत्त के लिए संदेह से प्रेरित होता है। अतः इसे भी सत्य माना जा सकता है

कि दर्शन अन्य क्षेत्रों जैसे मनोविज्ञान, राजनीति, विधि, तथा विज्ञान आदि के दावों के प्रति समान रूप से आलोचनात्मक है। दर्शन ऐसे किसी भी क्षेत्र द्वारा निर्मित तथा उन्नत युक्तियों, वैचारिक उपकरणों, पुष्टीकरण के प्रकार, प्रमाण के मानकों तथा सत् के लिए समान स्तर का संदेह प्रदर्शित करता है। सबसे बढ़कर, दर्शन ज्ञान के अपने कोष, सत्य के मानकों, जाँच के तरीकों तथा पुष्टीकरण को भी समान रूप से संदेह के साथ परखता है।

बोध–प्रश्न II

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. धर्म तथा धर्म–दर्शन के मध्य सम्बन्ध की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.4 धर्म–मीमांसा

धर्म–मीमांसा धर्म का एक व्यवस्थित अध्ययन है। उपरोक्त कथन किसी को यह पूछने के लिए प्रेरित कर सकता है कि यह धर्म के बारे में क्या अध्ययन करता है जो धर्म–दर्शन नहीं करता है। एक महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि धर्म–मीमांसा, धर्म–दर्शन के विपरीत, विशिष्ट धर्मों से जुड़ी हुई है, जिसका अर्थ है कि अधिकांश धर्मों की अपनी धर्म–मीमांसा है, और कई मामलों में, धर्मों के उप–सम्प्रदायों की भी अपनी धर्म–मीमांसा है। यद्यपि दोनों, धर्म–दर्शन और धर्म–मीमांसा, यह तर्क दिया जा सकता है, विषय–वस्तु में इतने भिन्न नहीं हैं जितना वे अध्ययन के उद्देश्य तथा जिस दृष्टिकोण से वे धर्म का अध्ययन करते हैं, उसमें भिन्न हैं।

धर्म–मीमांसा अपनी घोषणाओं तथा आदेशों को तार्किक रूप से सुसंगत सिद्धान्तों के रूप में सुव्यवस्थित/सुनियोजित/औपचारिक रूप प्रदान करने के उद्देश्य के साथ धर्म का अध्ययन है। इस बात की व्याख्या पहले ही की जा चुकी है कि धर्म के मूल सिद्धान्तों को उनके सामान्य रूप से दैवीय रहस्योद्घाटन या अन्तिम सत्ता के श्रद्धेय शब्द होने के कारण अपरिवर्तनीय माना जाता है और इसलिए यह उस धर्म के अनुयायी द्वारा समर्थित किसी भी प्रथा, रीति–रिवाज़ कर्मकाण्ड या विश्वास के लिए पुष्टीकरण का कार्य करता है। हालांकि ये मौलिक सिद्धान्त, उनकी पवित्रता की परवाह किये बिना, अस्पष्ट तथा असगंत प्रतीत हो सकते हैं, और इसलिए इनका निर्वचन किया जा सकता है और अक्सर चुनौतियों को आमंत्रित करते हैं। अतः, अनुयायियों तक सही व्याख्या पहुँचाने के लिए, जो विश्वसनीय रूप से अभ्यास कर सकते हैं, स्वीकार कर सकते हैं, और आस्था के साथ प्रचार कर सकते हैं; संशयात्मकता तथा अस्पष्टता से बचने के लिए; धार्मिक संदेश को आने वाली पीढ़ियों तक तथा उन लोगों तक पहुँचाने के लिए जो धर्म के दायरे में नहीं आये हैं; और दार्शनिक जाँच, वैज्ञानिक विकास तथा अन्य प्रतिस्पर्द्धी और परस्पर विरोधी विश्वासों द्वारा उठाई गयी चुनौतियों के खिलाफ़ एक बचाव तैयार करने के लिए धर्म–मीमांसा धर्म का गहन अध्ययन करती है तथा इसे एक ठोस आधार पर व्यवस्थित और औपचारिक रूप देने का प्रयास करती है। निम्नलिखित कुछ उदाहरण हैं जहाँ धर्म–मीमांसा को इसी का प्रयास करते हुए देखा जा सकता है।

3.4.1 ईश्वर के अस्तित्व के लिए प्रमाण तैयार करना

यह पहले ही प्रतिपादित किया जा चुका है कि ईश्वर की अवधारणा कई धर्मों के केन्द्र में है। अतः इस अवधारणा के पतन के साथ–साथ ऐसे धर्मों का पतन हो सकता है। किसी विशिष्ट धर्म के लिए ऐसी घटना की संभावना अक्सर अन्य धर्मों, दर्शन तथा विज्ञान की चुनौतियों से उभरती हैं। परिणामस्वरूप, किसी भी विशिष्ट धर्म के धर्म–मीमांसकों द्वारा किये गये प्रमुख कार्यों में से एक ईश्वर के अस्तित्व (उनके संस्करण) को प्रमाणित करना है। पूर्ववर्ती को साकार करने के लिए, धर्म–मीमांसक भी, जैसा दार्शनिक करते हैं, युक्तियों पर निर्भर होते हैं, लेकिन दर्शन के विपरीत, धर्म–मीमांसक इस पूर्वनिश्चित निष्कर्ष के साथ युक्ति को निर्मित

करता है कि ईश्वर अस्तित्ववान है। इसके अलावा, चुनौतियों का खण्डन करने उद्देश्य के लिए धर्म–मीमांसा को तर्क–वितर्क का साधन अपनाने की आवश्यकता होती है, फिर भी, तर्क–वितर्क को अपनाने में, श्रद्धामूलक युक्ति का त्याग नहीं होता है। अतः धर्म–मीमांसा, उपर्युक्त इंगित अर्थों में, अपने समय की बढ़ती चुनौतियों को संबोधित करने की आवश्यकता तथा धार्मिक सिद्धान्तों की परम सत्ता को संरक्षित करने की आवश्यकता के बीच कहीं फंस गयी है।

3.4.2 ईश्वर की धारणा की व्याख्या करता है तथा ईश्वर के विभिन्न गुणों के मध्य संगतता प्रदर्शित करने का प्रयास करता है

अधिकांश धर्मों में, धर्ममीमांसा के प्रमुख योगदानों में से एक ईश्वर की अवधारणा को स्पष्ट करना और निश्चित रूप देना है, जो ना केवल किसी विशिष्ट धर्म द्वारा उन्नत तत्वमीमांसा के अनुरूप है, बल्कि दार्शनिक जाँच का सामना करने में भी सक्षम है। धर्म–मीमांसा, ऐसे करने में, किसी विशिष्ट धर्म में ईश्वर के पारंपरिक गुणों पर निर्भर करता है जैसा कि अधिकांश एकेश्वरवादी धर्मों की धर्म–मीमांसा ईश्वर को परिभाषित करने के लिए सर्वशक्तिमान, परोपकार, सर्वव्यापकता, शाश्वतता और सर्वज्ञता पर निर्भर करती है। यद्यपि, इनमें से कुछ लक्षण, दार्शनिक अन्वेषण करने पर एक–दूसरे से संगत नहीं लगते हैं जैसे कि पिछले खण्ड में अशुभ के संदर्भ में उद्धृत, जैसे सर्वशक्तिमान तथा परोपकार। धर्म–मीमांसक, हालांकि, स्वातन्त्रय इच्छा के कारण ऐसे विरोधाभासों का विरोध करते हैं। अतः, धर्म–मीमांसा के नज़रिये से, अशुभ को रोकने के लिए ईश्वर का हस्तक्षेप ना होना, ईश्वर तथा उसके गुणों के बीच कोई टकराव पैदा नहीं करता है। यद्यपि दार्शनिक अन्वेषण अभी भी यह तर्क देता है कि अशुभ की ऐसी अवधारणा बहुत संकीर्ण है क्योंकि यह प्राकृतिक आपदाओं, महामारी, बीमारियों आदि को अस्पष्ट छोड़ देती है। जैसा भी हो, पूर्वोक्त का उद्देश्य धार्मिक युक्तियों की ताकत या कमजोरी प्रदर्शित करना नहीं है। यद्यपि, यह दिखाने के लिए है कि धर्म–मीमांसा कैसे धर्म इसके विभिन्न भागों को एक सुसंगत समष्टि की तरह साथ लाने का प्रयास करके पूर्ण करता है।

3.4.3 नीतिशास्त्रीय तथा नैतिक उपदेशों का वर्गीकरण

धर्म–मीमांसकों द्वारा समाज के संगठन के लिए तथा कई धर्मों के सन्दर्भ में व्यक्तियों की नैतिक सीमा को निर्देशित करने वाला अन्य महत्वपूर्ण कार्य नीतिशास्त्रीय तथा नैतिक सिद्धान्तों और उनकी व्याख्याओं का वर्गीकरण है। अधिकांश धर्मों में धर्माज्ञा या आदेश होते हैं जिनका पालन एक सच्चे अनुयायी को करना चाहिए, लेकिन ज्यादातर ऐसे सिद्धान्तों का निर्वचन संभव हो सकता है। धर्म–मीमांसा, इस पृष्ठभूमि में, उन्हें प्रासंगिक व्याख्यायें प्रदान करता है और अनुयायियों के लिए उनकी व्याख्या करता है, उसके द्वारा समाज के एक वर्ग के लिए सही तथा गलत का सीमांकन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अधिकतर समाजों में ऐसी भूमिका केवल उस सीमांकन तक ही सीमित नहीं है जो व्यक्तिगत विवेक को प्रेरित कर सकती है। इसके विधिक निहितार्थ भी हैं जो धर्म द्वारा स्थापित विधिशास्त्र द्वारा शासित होते हैं। धर्ममीमांसा अपने सिद्धान्तों को आकार देने तथा वर्गीकरण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अधिकांश धर्मों के अपने विधिशास्त्रीय संप्रदाय हैं, जो उन समाजों की विधिक गतिविधियों को निर्धारित करते हैं जहाँ उनका पालन किया जाता है। उदाहरणतः, दुनिया के कई देश इस प्रकार के सिद्धान्तों के इर्द–गिर्द अपनी पूरी विधिक व्यवस्था की संरचना करते हैं, जबकि, अन्य में, इसका आंशिक प्रयोग देखा जा सकता है, जैसे कि भारत में, जहाँ यह केवल व्यक्तिगत नियमों तक ही सीमित है।

3.4.4 आत्म–साक्षात्कार हेतु धर्म द्वारा स्थापित तरीकों को स्पष्ट करता है

यह पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि जीवन का अर्थ या जीवन का उच्च उद्देश्य एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे अधिकांश धर्म संबोधित करते हैं, लेकिन यह धर्म–मीमांसा है जो मानव की वास्तविक प्रकृति के गुणों को स्पष्ट करने का प्रयास करती है जो कि मानव जीवन के वास्तविक उद्देश्य के अनुरूप है जैसा धर्म इसे ग्रहण करता है। ऐसा करने में, अन्य उदाहरणों की तरह, यह अन्य धर्मों, दर्शन, तथा विज्ञान द्वारा उठायी गयी चुनौतियों को भी संबोधित करता है। धर्म–मीमांसा धर्म के निर्देशानुसार किसी के जीवन का नेतृत्व करते हुए अनुष्ठानों और धार्मिक रस्मों को भी व्यवस्थित करता है। इसमें किये जाने वाले अनुष्ठान, संपादित करने

के प्रकार और उन्हें कब करना है, यह निर्दिष्ट करना शामिल होता है। इस तरह के व्यवस्थापन में अक्सर प्रार्थना तथा पूजा करने के तरीके भी शामिल होते हैं।

उपर्युक्त कुछ उदाहरण यह दिखाने के लिए हैं कि धर्म–मीमांसा कैसे धर्म के निहितार्थों और दावों को सुसंगत तथा तार्किक रूप से अनुकूल सिद्धान्तों में सुनियोजित करने हेतु धर्म का व्यवस्थित अध्ययन करती है।

इस इकाई में सीमांकन के पिछले प्रयास सभी तीन क्षेत्रों के मध्य स्पष्ट अन्तर बताने का संकेत देते हुए प्रतीत हो सकते हैं, लेकिन, व्यवहार में यह पाया गया है कि यह उतना आसान कार्य नहीं है जितना प्रतीत होता है। इन क्षेत्रों के मध्य विभिन्न प्रतिच्छेदन बिन्दु ऐसी स्थितियाँ प्रस्तुत करते हैं जहाँ एक ज्ञानक्षेत्र की विषय–वस्तु को गलती से किसी अन्य क्षेत्र का समझा जा सकता है। निर्णय में ऐसी त्रुटियां काफी हद तक आम हैं। उदाहरणतः, निर्णय में बहुधा की गयी त्रुटि ईशवर, आत्मा, स्व के अस्तित्व और प्रकृति के लिए प्रस्तुत की गयी युक्तियों को केवल इस आधार पर धर्ममीमांसीय समझना कि संबद्ध विषय–वस्तु का स्वरूप धार्मिक है। यद्यपि धर्म–दर्शन भी समान विषय–वस्तु में, समान उद्देश्य के साथ युक्तियां प्रस्तुत करते हुए शामिल हो सकते हैं, अर्थात् ईश्वर या आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए, उनकी प्रकृति को समझने के लिए; तथा ऐसा करने में, इसकी दार्शनिक प्रवृत्ति किसी भी प्रकार से इससे अलग नहीं होती है। इसी प्रकार से, असावधानीपूर्वक या जानबूझकर, दर्शन की आड़ में धममीमांसीय युक्तियां भी प्रस्तुत की जातीं हैं। तर्क–वितर्क वास्तव में धर्म–मीमांसा तथा धर्म–दर्शन दोनों के लिए केन्द्रीय भूमिका में है, लेकिन यह किसी संवाद को दार्शनिक अभिलक्षित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। उदाहरणतः, यदि किसी युक्ति का प्रयोग ईश्वर, आत्मा, आदि का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए श्रद्धामूलक युक्ति को छोड़े बिना किया जाता है, क्या कोई ऐसी युक्ति को दार्शनिक कह सकता है, जहाँ वैचारिक स्थिति दृढ़ हो, सभी सत्य परमसत्य हों, विरोधी दृष्टिकोण पर उचित विचार नहीं किया जाता हो, तथा पुष्टीकरण के तरीकों पर प्रश्न नहीं किया जाता हो? दूसरी तरफ़, ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए, अपनी स्थिति तथा पुष्टीकरण के प्रकार की आलोचनात्मक समीक्षा, वैकल्पिक

तथा विरोधी मत का स्वागत करते हुए उस पर उचित विचार, संज्ञानात्मक पूर्वग्रहों तथा हेत्वाभासों पर निरंतर सतर्क दृष्टि रखते हुए दार्शनिक युक्तियां भी दी जा सकती हैं। दर्शन किसी भी ज्ञान पद्धति की बुनियाद पर प्रश्न करने से हिचकिचाता नहीं है तथा तर्क के आदेशानुसार यह अपनी स्थिति बदलने के लिए तैयार रहता है, जिसका अर्थ है कि यह संपूर्णता की खाई में गिरने से सदैव सावधान रहता है।

बोध प्रश्न III

ध्यातव्यः क) उत्तर के लिए दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1. पहले से मौजूद धार्मिक सिद्धान्तों की स्थिति में, धर्ममीमांसा की भूमिका के बारे में आप क्या सोचते हैं?

.....

.....

.....

.....

3.5 सारांश

जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया है, धर्म, धर्म–दर्शन, तथा धर्म–मीमांसा, क्षेत्रों का परस्पर व्याप्त होना प्रस्तुत करते हैं, जो समानता का मिथ्या भाव पैदा कर सकते हैं। इस इकाई में उनके अन्तर के सटीक विवरण करने का प्रयास किया गया है।

धर्म एक समाजिक–सांस्कृतिक घटना है जिसे विश्वासों, सम्बद्ध प्रथाओं तथा रीति–रिवाजों के समुच्चय द्वारा निरूपित किया जाता है जो इसके अनुयायियों की जीवन शैली को निर्धारित करती है तथा आकार देती है। इसका प्रभाव हमारी कुछ मूलभूत चिंताओं जैसे सत् की प्रकृति

तथा अस्तित्व, इसमें हमारा स्थान, इस प्रकार के सत् में हमारी प्रकृति तथा उद्देश्य, और ऐसे सत् की रूपरेखा के अन्दर शुभ तथा अशुभ की अवधारणाओं के उत्तर प्रस्तुत करने के दावे में निहित है। ऐसा करने में यह दृढ़ रूप से पुष्टीकरण के एक प्रकार के रूप में श्रद्धामूलक युक्ति पर निर्भर होता है, इस बात पर बल देते हुए कि एक अनुयायी के पास इस तरह की विश्वास प्रणाली को अपनाने के लिए आस्था पर निर्भर होने के अलावा अन्य कोई साधन नहीं है।

दूसरी ओर, धर्म–मीमांसा, धार्मिक सिद्धान्तों के सुव्यवस्थित तथा औपचारिक रूप को एक सुसंगत संघटित समष्टि बनाने का एक धर्म–विशिष्ट या उप–सम्प्रदाय विशिष्ट प्रयास है। इस तरह का प्रयास अपने अनुयायियों के लिए धर्म का एक स्पष्ट रूप उनके अबाधित अनुसरण, प्रथाओं, रीति–रिवाज़ों को सुनिश्चित करने के लिए, दीक्षित तथा अदीक्षित को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए, तथा अन्य धर्मों, दार्शनिक परीक्षण, और चुनौतीपूर्ण वैज्ञानिक तथ्यों से आने वाली चुनौतियों को संबोधित करने को प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया जाता है।

धर्म–दर्शन, हालांकि, अपने परीक्षण के लिए धार्मिक सिद्धान्तों में संदेह का रूख अपनाता है, तथा धार्मिक विश्वास प्रणालिओं की तर्कपूर्णता को धर्म के धर्ममीमांसीय रीतिवाद, अन्य क्षेत्रों में सामान्य दार्शनिक अन्वेषण से जुड़े परिणामों तथा विकास तथा सतत वैज्ञानिक विकास और अन्य विरोधी या समवर्ती स्थिति के व्यापक सन्दर्भ में समझने का प्रयास करता है।

3.6 कुंजी शब्द

धर्म–मीमांसा : धार्मिक सिद्धान्तों को अनुयायियों के लिए अभ्यास करने, स्वीकार करने तथा आस्था के साथ यह उपदेश देने तथा पढ़ाने के लिए, दार्शनिक अन्वेषण, अपने समय के वैज्ञानिक विकास, तथा अन्य प्रतिस्पर्धी और विरोधी विश्वास प्रणालियों द्वारा उठाई गयी चुनौतियों को संबोधित करने के लिए, विश्वासों की सामंजस्यपूर्ण संस्था में सुव्यवस्थित/सुनियोजित/औपचारिक रूप देने का एक प्रयास है।

धर्म–दर्शन : एक द्वितीय कोटि की क्रिया जो धर्म के पहलुओं तथा उनसे संबद्ध धर्ममीमांसा द्वारा दी गयी युक्तियों का आलोचनात्मक दृष्टि से निरीक्षण करता है।

3.7 अन्य सहायक–अध्ययन सामग्री एवं सन्दर्भ

- गैलोवे. जी. (1914). *द फिलोसॉफी आफ रिलीजन इन रिलेशन टू फिलोसॉफी एन्ड थियोलॉजी. इन द फिलोसॉफी आफ रिलीजन* (Pp. 46–53). चार्ल्स स्क्रिबनर सन्स.
- हिक, जे (1990). *फिलोसॉफी आफ रिलीजन.* (4th ed). प्रेन्टिस हॉल.
- मूर, बी. एन. एण्ड पार्कर, आर. (2021). *क्रिटिकल थिंकिंग* (13th ed). मैक्ग्रा हिल एजुकेशन.
- यांडेल. के. ई. (2002). ''व्हाट इस फिलोसॉफी? व्हाट इस रिलीजन? व्हाट इस फिलोसॉफी आफ रिलीजन?'' इन *फिलोसॉफी आफ रिलीजनः ए कंटेम्प्रेरी इन्ट्रोडक्शन* (Pp. 15–19). रूटलेज.

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

धर्म जरूरी अभिज्ञेय तत्वों के साथ विश्वासों, उससे जुड़ी प्रथाओं, तथा रीति–रिवाजों का मूल समुच्चय है जो इसके क्षेत्र का सीमांकन करते हैं। इनमें से कुछ तत्व निम्नलिखित हैं जो इस प्रकार के सीमांकन की अनुमति देते हैंः

सबसे पहले, अधिकांश धर्म हमारे सत् का ढांचा प्रदान करने का दावा करते हैं जहाँ हमारा जीवन, भौतिक जगत तथा सम्बद्ध पहलुओं का अर्थ, जो प्रकट/स्पष्ट है, उससे एक व्यापक सन्दर्भ में प्रदान किया जाता है। इस प्रकार का सन्दर्भ अधिकांश धर्मों के लिए सामान्य रूप से हमारे वास्तविक स्वरूप तथा हमारे जीवन के सुपरिभाषित उद्देश्य का विस्तृत विवरण शामिल होता है जो इस तरह की प्रकृति तथा शेष सत् के अनुरूप होता है। दूसरा, अधिकांश धर्मों में इस तरह के ज्ञान का स्रोत कोई धार्मिक सत्ता, शास्त्र, या रहस्योद्घाटन होता है। अतः निसन्देह अधिकांश धार्मिक सिद्धान्त आस्था पर टिके हुए हैं तथा पुष्टीकरण के लिए श्रद्धामूलक युक्ति अपनाते हैं। तीसरा, अधिकांश धर्म शुभ और अशुभ के क्षेत्र का सीमांकन

करते हैं, तथा उन आज्ञाओं और आदेशों को जारी करके जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए, वे नीतिगत आचरण को सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं जो कि धर्म द्वारा परिभाषित जीवन के उद्देश्य के अनुरूप है। अंत में, अधिकांश धर्म, पूजा के प्रकार, अभ्यास किये जाने वाले अनुष्ठान, प्रस्तुत की जाने वाली प्रार्थना, संचालित की जाने वाली रस्में/रीतियां, उनके द्वारा रचित सत् के सार्थक हिस्से के रूप में व्यवस्थित रूप से आयोजित करते हैं।

बोध प्रश्न II

धर्म–दर्शन विश्वासों, सम्बद्ध प्रथाओं, रीति–रिवाज़ों का एक द्वितीय कोटि का अन्वेषण है जो संदेह के दृष्टिकोण को अपनाते हुए तथा पुष्टीकरण के लिए युक्ति के साधन पर निर्भर होते हुए धर्म का चित्रण करते हैं। अपना अन्वेषण करते हुए यह तार्किक विसंगतियों तथा असंगतियों के लिए धर्म द्वारा विकसित अवधारणाओं और प्रतिज्ञप्तियों का निरीक्षण करता है। इसके अलावा, यह धर्म की विभिन्न अवधारणाओं तथा दावों के मध्य तार्किक विसंगतियों और असंबद्धता की धर्म के दृष्टिकोण से जाँच करता है। साथ ही, यह सामान्य दार्शनिक अन्वेषण, वैज्ञानिक खोज, तथा अन्य प्रतिस्पर्द्धी, परस्पर विरोधी, तथा यहाँ तक कि समवर्ती स्थितियों से जुड़े विकास और परिणामों के आलोक में धार्मिक सिद्धान्तों की जाँच करता है। धर्म, उपरोक्त अर्थों में धर्म–दर्शन की विषय वस्तु है।

बोध प्रश्न III

धर्म–मीमांसा अपनी घोषणाओं तथा आदेशों को सिद्धान्तों के रूप में सुव्यवस्थित/सुनियोजित/औपचारिक रूप प्रदान करने के उद्देश्य के साथ धर्म का अध्ययन है। यह कार्य उन अनुयायियों तक सही व्याख्या पहुँचाने के लिए किया जाता है जो विश्वसनीय रूप से आस्था के साथ अभ्यास, प्रचार तथा दावा कर सकते हैं; अस्पष्टता से बचने के लिए, और आने वाली पीढ़ियों तथा उन लोगों तक धार्मिक संदेश पहुँचाने के लिए जो अभी तक धर्म के दायरे में नहीं हैं। इसके अलावा, पूर्वगामी संदर्भ में, धर्म–मीमांसा का जोर

विसंगतियों को दूर करना तथा धर्म के विभिन्न घटकों के मध्य एक प्रकार से सुसंगतता स्थापित करने पर होता है जो दार्शनिक खोज, वैज्ञानिक विकास, तथा अन्य प्रतिस्पर्द्धी और विरोधी विश्वास प्रणालिओं द्वारा प्रस्तुत की गयीं चुनौतियों को संबोधित करने में सक्षम है। अपने उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए, धर्म–मीमांसा, काफ़ी हद तक, धर्म–दर्शन की तरह ही युक्ति के साधन पर निर्भर करता है, लेकिन ऐसा करने में यह श्रद्धामूलक युक्ति को पुष्टीकरण के अन्तिम साधन के रूप में त्यागता नहीं है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY